ISSN: 0973-0583

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विकास में थेरवाद की भूमिका : एक विमर्श

प्रो॰ विश्वजीत कुमार

प्रोफसर सह अध्यक्ष, पालि विभाग, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, बिहार

सार

भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास अत्यन्त ही प्राचीनतम् है। ऐतिहासिक अध्ययन से ऐसा पता चलता है कि भारतीय संस्कृति और इसका क्षेत्र न सिर्फ वर्तमान भारत वर्ष रहा है अपितु दुनिया के बहुतेरे देश भारतीय संस्कृति के पोषक रहे हैं। प्रस्तुत आलेख का प्रधान विषय भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है। तब यह भी निश्चय करना होगा कि संस्कृति क्या है? राष्ट्रवाद से इसका क्या सम्बन्ध है? जैसा मैंने अबतक पढ़ा है उससे यह ज्ञात होता है कि मानव सभ्यता के विकास के सभी आयाम संस्कृति विकास के प्रमुख पक्ष हैं उनमें अक्षर ज्ञान से लेकर, भाषा, धर्म, वेष-भूषा आदि सभी समाहित हैं। अब हमें राष्ट्रवाद के पर भी विचार करना होगा। हाँलाकि यह नामकरण आधुनिक विश्व में 17वीं- 18वीं शताब्दी से प्रचलन में आया है। ऐसा सिर्फ राष्ट्रवाद के संदर्भ में नहीं है वरन मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि कई क्षेत्रों में ऐसे नामकरण आधुनिक काल में प्राप्त होते हैं परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि मनोविज्ञान और समाजशास्त्र जैसे शब्दों के उद्भूत होने के पूर्व मन का अध्ययन भारत सहित दुनिया में नहीं होता था। जब हम अभिधर्म दर्शन को पढ़ते हैं तब वर्तमान मनोविज्ञान से ज्यादा समृद्ध मन का अध्ययन प्राप्त होता है। उसी प्रकार समाजशास्त्र शब्द के अस्तित्व में आने के पूर्व भी मानव समाज का अध्ययन करता था, जिसके प्रमाण प्राचीन भारतीय एवं विश्व साहित्य में बहुतेरे रूप से प्राप्त होते हैं।

शब्द कुँजी : भारतीय संस्कृति, राष्ट्रवाद, थेरवाद, अभिधम, मनोविज्ञान

अब मैं आप विद्वानों का ध्यान सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ओर ले जाना चाहूँगा। हालांकि यह प्रविधिक शब्द 17वीं 18वीं शताब्दी की देन हैं परन्तु राष्ट्र की संकल्पना भारतीय शास्त्रों में हजारों वर्ष पहले से चली आ रही है। जब राष्ट्र की संकल्पना हजारों वर्ष पूर्व से आ रही है तब उसके धर्म, भाषा, समाज, पूजा-पद्धति आदि भी हजारों वर्ष पूर्व से ही आ रही होगी, ऐसा मेरा मानना है, तब हम इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के काल को भारत के संदर्भ में काफी पीछे से गणना कर सकते हैं। वह काल वेदों का काल, त्रिपिटक का काल और जैन साहित्य का काल भी हो सकता है क्योंकि इन तीनों परम्पराओं ने भारतीय धर्म, भाषा, पूजा पद्धति, वस्त्रभूषण आदि के द्वारा भारतीय विचारधाराओं का उपवृंहन भारत से इतर कई अन्य देशों में स्थापित किया और दुनिया के एक तिहाई आबादी को भारतीय संस्कृति से ऐसा बान्ध की अबतक वे उसका अनुसरण करते हुए भारतीय धर्म, पूजा-प्रणाली, वस्त्रभूषण आदि के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का ध्वज फहरा रहे हैं।

उपर्युक्त वर्णित भारतीय तीन परम्पराओं में बुद्ध धर्म की प्रारंभिक शाखा थेरवाद ने 2300 वर्ष पूर्व अपने धर्म महामात्यों के द्वारा जिन क्षेत्रों में भारतीय राष्ट्रवाद की अलख जगायी है, उनके विभिन्न पक्षों पर हम आप महानुभावों का ध्यान आकृष्ट करायेंगे और आशा करेंगे कि आपसब भी इससे सहमत होंगे।

थेरवाद साहित्य एवं संस्कृति के अध्ययन से यह पता चलता है कि भारतीय सांस्कृतिक विकास के बहुतेरे आयाम को उद्भूत करने का श्रेय थेरवाद बुद्धधर्म को जाता है उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं-

1. लेखन कला का विकास

भारतवर्ष में लेखन कला का विकास संभवत: बुद्ध के पूर्व ही हो चुका होगा परंतु उसके कोई साक्ष्य साहित्यक अथवा पुरातात्विक रूप में प्राप्त नहीं होते है जैसी मेरी जानकारी है। तृतीय संगीति के उपरांत सम्राट अशोक ने सम्पूर्ण वृहत्तर भारत में शिलालेख, स्तम्भ लेख, गुहा लेख आदि लिखने की राजाज्ञा निर्गत की और उसके प्रतिफल स्वरूप आज वे शिलालेख, स्तंभ लेख आदि प्राचीन ज्ञान के साक्ष्य के रूप में हमें प्राप्त हो रहे हैं। इसका श्रेय भी तृतीय संगीति के आचार्यों के साथ ही पालि परम्परा को देना होगा। दुर्भाग्यवश जिस अभिलेख परम्परा की शुरुआत बिहार प्रदेश से हुई उसका कोई भी प्रमाण इस बिहार की भूमि में प्राप्त नहीं हो रहे हैं। यह गवेषण का विषय है कि रूम्मनदेई में

अशोक ने शिलालेख लगवाया तो बोध गया में भी निश्चित तौर पर लगवाया होगा क्योंकि बोधगया धार्मिक महत्व में किसी भी प्रकार से कम नहीं है।

अब तक जो सामान्य मान्यता पुरातत्त्वविदों के द्वारा स्थपित थी कि भारतवर्ष में लेखन कला का विकास तीसरी, चौथी शताब्दी ई॰पू॰ में हुई थी, जो अशोक के काल के आसपास पहुँच रही थी। इसका कारण इतिहासकार और पुरातत्त्वविद यह देते थे कि इस बात के कोई पुरातात्त्विक अवशेष पूर्व के नहीं प्राप्त होते हैं कि लेखन कला इसके पूर्व में भारत में थी। हांलाकि हमलोग जैसे प्राचीन भारतीय साहित्य के विद्यार्थी साहित्यिक स्रोतों के आधार पर यह कहते थे कि पालि साहित्य में लेखन कला की चर्चा प्राप्त होती है, तब इतिहासकार एवं पुरातत्त्वविद् इसे पूरी तरह से नकार देते थे, पालि साहित्य में लेखन कला के जो सन्दर्भ प्राप्त हो रहे हैं वे इस प्रकार हैं -

तेन खो पन समयेन राजगहे सत्तरसवग्गिया दारका सहायका होन्ति। उपालि दारका तेसं पामोक्खो होति। अथ खो उपालिस्स मातापितुन्नं एतदहोसि केन नु खो उपायेन उपालि अम्हांक अच्चयेन सुखं च जीवेत्यं, न च किलमे" याह्र ति? अथ खो उपालिस्स मातापितुन्न एतदहोसि- ह्सचे खो उपालि लेखं सिक्खस्सति अङ्गुलियो दुक्खा भविस्सन्ति। सचे खो उपालि गणनं सिक्खेय्य, एवं खो उपालि अम्हाकं अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्याह्रति। अथ खो उपालिस्स मातापितुव्यं एतदहोसि - ह्सचे खो उपाधि गणनं सिक्खिस्सति, उरस्सदुक्खो भविस्सति। सचे खो उपालि एवं सिक्खे"य न च किलमेय्या'' ति। अथ खो उपालिस्स मातापितुन्न एतदहोसि - सचे खो उपालि रूपं सिक्खिस्सति, अक्खीनि दुक्खानि भविस्सन्ति। इमें खो समणा साक्यपुत्तिया सुखसीला सुखसमाचारा सुभोजनानि भुञ्जित्वा निवातेसु। सचनेसु सचन्ति। ''सचे खो उपालि समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्य, एवं खो उपालि अम्हांक अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्या'' ति।1

अर्थात-

उस समय राजगृह में सत्तरह पुरुषों वाले समूह के लड़के परस्पर मित्र बने हुए रहते थे। उपालि नामक लड़का उनका प्रधान था। उस उपालि के माता-पिता ने सोचा किस उपाय से यह हमारा लड़का, हमारे मरने के बाद भी, सुख से रह पाएगा? दुःख न पाएगा? तब उनके ध्यान में यह बात आयी, यदि यह उपालि लिखना सीखेगा तो इसकी अंगुलियाँ दुखेगी। हाँ, यदि यह गणना सिख ले तो इसे यह कष्ट ना होगा। फिर उन्हें ध्यान में आया -''यदि यह गणना सीखेगा तो यह कार्य करते-करते निरन्तर बैठे रहने के कारण जांघे दुखने लगेगी। अतः इसे चित्रकला सीखानी चाहिए। तब उन्हें यह बात ध्यान में आयी कि यदि यह चित्रकला सीखेगा तो इसकी आँखें दुखनी लगेंगी। हाँ, ये शाक्यपुत्रीय श्रमण बिना कुछ किए धारे सुख से जीवन-यापन कर रहे हैं। ये प्रतिदिन उत्तम भोजन कर अच्छे आवासों में रहते तथा अच्छी शय्याओं पर सोते हैं। तो क्यों न उपालि भी इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों में जाकर भिक्षु बन जाए। इस प्रकार यह, हमारे मरने के बाद भी सुखी रहेगा, कोई दुःख नहीं पाएगा।

इस तथ्य को अब पुरातत्त्वविदों द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो रही है क्योंकि अब न स्र्फि देश में बल्कि विदेशों में भारतीय लेखनकला के पूर्ववर्ती पुरातात्त्विक प्रमाण उपलब्ध हो रहे हैं।

A long number of calibrated C-14 sites from the 100 ha city of Anuradhapur in the north central section of Sri Lanka put the beginning of the elearly historic period at the site between 7th and 6th century BC. An important archeological component of this period is the occurrence of Brahmi script which is Found incised. On a large number of sherds. They begin to oecur right from the beginning of the Anuradhapura early historic period. According to a different estimate the first phase of the early historic period at the site, which possesses 'four potsherds' scratched with portions of Brahmi inscriptions, cut in ill-formed but nonetheless Convincing letters, is between 450 BC and 350 BC, But in this case uncabli brated versions of the radiocarbon dates have been used. Whatever it is the occurance of Brahmi script at Anuradhapura is considerably earlier than the dates of the Asokan inscriptions.2

इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि भारत में लेखन कला का विकास अब तक की मान्यताओं के पूर्व का था।

2. पुस्तक प्रणाली का उद्भव एवं विकास

आज यह संसार अति आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है। अभी तक शास्त्र सृजन की जो प्रणाली पालि भाषा के प्रारंभिक आचार्यो ने अपनाये उनसे इतर पारंपरिक विधि में लेखन परम्परा प्राप्त नहीं होती है। पालि परम्परा

के लोगों ने प्रथम संगीति से तृतीय संगीति तक जिस पद्धति को अपनाया उसकी प्रणाली पर किसी ने कोई आक्षेप नहीं लगाया। संस्कृत साहित्य के बहुत सारे ग्रंथों पर यह आरोप है कि इसके बहुत सारे अंश प्रक्षृप्त अथवा बाद में जोड़े गये हैं, जैसे-ऋग्वेद का दसवॉ मंडल आदि।

बुद्ध-परंपरा में शास्त्र-सृजन का कार्य बुद्ध परिनिर्वाण के बाद प्रथम संगीति में हुआ, जिसका अंतिम रूप तृतीय संगीति में हो पाया। यहाँ मैं यह उद्धरण चाहता हूँ कि तथागत प्रवेदित ज्ञान ने प्रथम संगीति के उपरान्त शास्त्रों की एक विस्तृत श्रृंखला स्थापित किया क्योंकि किसी एक व्यक्ति द्वारा प्रवेदित ज्ञान इतना विस्तृत एवं बहुआयामी स्वरूप अब तक प्राप्त कर पाया हो-मेरी जानकारी में नहीं है। बुद्ध के शास्त्रों की सूची निम्न प्रकार से है:-

1. विनयपिटक- भिक्षुओं के आचरण का नियमन करने के लिए भगवान् बुद्ध ने जो नियम बनाये थे, वे 'प्रातिमोक्ष' (पातिमोक्ख) कहे जाते हैं। इन्हीं नियमों की चर्चा विनयपिटक में है। तीनों पिटकों में विनयपिटक का स्थान सर्वप्रथम है। प्रातिमोक्ष की महत्ता इसी से सिद्ध है कि भगवान् ने स्वयं कहा था कि उनके न रहने पर भी प्रतिमोक्ष और शिक्षापदों के कारण भिक्षुओं को अपने कर्तव्य का ज्ञान होता रहेगा और यह संघ भी स्थायी रहेगा।

प्रारम्भ में केवल 152 नियम बने होंगे, किन्तु विनयपिटक की रचना के समय उनकी संख्या 227 हो गयी थी। 'भिक्खुविभ्ग', जो विनयपिटक का प्रथम भाग है। वस्तुत: इन 227 नियमों का विधाान करनेवाले शिक्षापदों की व्याख्या है। ये व्याख्यात्मक ग्रन्थ पाराजिक, पाचित्तिय नाम से प्रसिद्ध हैं। विनयपिटक के दूसरे भाग का नाम 'खन्धक' है। महावग्ग तथा चुल्लवग्ग ये दोनों ग्रन्थ 'खन्धक' में समाविष्ट है। विनयपिटक का अन्तिम अंश परिवार हैं इसमें वैदिक अनुक्रमणिकाओं की तरह त्रिपिटक से सम्बुद्ध कई सूचियों के समावेश है।

2. सुत्तपिटक- यह भगवान के लोकोपकारी उपदेशों का संग्रह है। इसमें पाँच निकायों का समावेश हैं-

1. **दीघनिकाय** में 34 सुत्त हैं। ये सुत्त लम्बे हैं। अत: 'दीघ' (दीर्घ) कहे गये हैं। इनमें यथास्थान शील, समाधि एवं प्रज्ञा का रोचक वर्णन है।
2. **मज्झिमनिकाय** में मध्यम आकार के (न अधिक लम्बे न छोटे) 152 सुत्तों में भी बुद्ध के उपदेशों का संवादात्मक संग्रह है। इनमें चार आर्यसत्य निर्वाण, कर्म, सत्कायदृष्टि, आत्मवाद, ध्यान आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों की चर्चा है। यह ग्रन्थ भी मूलपण्णासक, मज्झिमपण्णासक तथा उपरिपण्णासक नाम से 50-50-52 सुत्तों से तीन भागों में विभक्त है।
3. **संयुत्तनिकाय** में 56 संयुत्तों का संग्रह है। जैसे- प्रथम देवतासंयुत्त में देवताओं के वचनों का तथा मारसंयुत्त में बुद्ध को विचलित करने के लिये मार द्वारा किये गये प्रयत्नों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में काव्य की दृष्टि से भी पर्याप्त सामग्री है।
4. **अंगुत्तरनिकाय** में 2308 सुत्त हैं। उनमें एक वस्तु से लेकर ग्यारह वस्तुओं तक का क्रमश: समावेश किया गया है। इसमें विषय-वैविध्य का होना स्वाभाविक है।
5. **खुद्दकनिकाय** में- खुद्द (क्षुद्र) अर्थात् छोटे-छोटे उपदेश ग्रन्थों का संग्रह है। इस निकाय में निम्नलिखित 15 ग्रन्थों का समावेश है -

1. **खुद्दकपाठ**- इसमें त्रिशरण, दश शिक्षापद आदि बौद्ध धर्म में प्रवेश चाहने वालों के लिये अवश्यक ज्ञातव्य विषयों का समावेश है।
2. **धम्मपद**- बौद्ध ग्रन्थों में यह सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वशाली ग्रन्थ है। इसमें भगवान् बुद्ध द्वारा प्रद्वत नैतिक उपदेशों का संग्रह है।
3. **उदान**-इसमें एक ही विषय का निरूपण करनेवाली अल्पसंख्यक गाथाओं का संग्रह है। प्रासंगिक दो-चार गाथाओं में भगवान् ने अपना मन्तव्य व्यक्त किया है।
4. **इतिवुत्तक**- इस ग्रन्थ में 'भगवान् ने ऐसा कहा' - इस मन्तव्य से गाथाओं तथा गद्यांशों का संग्रह है।
5. **सुत्तनिपात**- इसमें भगवान् के प्राचीनतम उपदेशों का संग्रह है।
6. **विमानवत्थु**- इसमें देवयोनि की कथाओं के सहारे कर्मफल-सिद्धान्त का वर्णन हुआ है।
7. **पेतवत्थु**- इस ग्रन्थ में प्रेतयोनि-कथाओं के प्रमाण से कर्मफल का वर्णन है।
8. **थेरगाथा** - इस ग्रन्थ में बौद्ध भिक्षुओं ने अपना-अपना अनुभव काव्य में व्यक्त किया है।
9. **थेरीगाथा**- इसमें बौद्ध भिक्षुणियों ने अपना-अपना अनुभव कविता के माध्यम से व्यक्त किया है।
10. **जातक**- इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्मकृत सदाचारों को व्यक्त करनेवाली 547 कथाओं का संग्रह है। नीति शिक्षण की दृष्टि से इन कथाओं की समानता करने वाला ग्रन्थ अन्यत्र दुर्लभ है।
11. **निद्देस**- यह ग्रन्थ सुत्तनिपात के अट्टकवग्ग तथा

खग्गविषाणसुत्त एवं पारायण वग्ग की व्याख्या है। यह चुल्लनिद्देस तथा महानिद्देस नाम से दो भागों में विभक्त है।

12. **पटिसम्भिदामग्ग**- इसमें प्राणायाम ध्यान कर्म, आर्यसत्य, मैत्री आदि का वर्णन है।
13. **अवदान**- इसमें अर्हतों (ज्ञानियों) के पूर्वजन्मों का वर्णन है।
14. **बुद्धवंस**- इसमें भगवान् बुद्ध से पूर्व हुए 24 बुद्धों का जीवनचरित है।
15. **चरियापिटक**- यह खुद्दकनिकाय का अन्तिम ग्रन्थ है। इसमें बुद्ध ने अपने पूर्व अनुभव में कौन-सी पारमिता, किस भाव में, किस प्रकार पूर्ण की- इसका वर्णन है।

3. अभिधम्मपिटक- इस पिटक में भगवान बुद्ध के उपदेशों के आधार पर बुद्ध दार्शनिक विचारों की व्याख्या की गयी है। इस पिटक में इन सात ग्रन्थों का समावेश है-

1. **धम्मसंणिनी**- इसमें धर्मों का संगणना और व्याख्या की गयी है।
2. **विभअ**- इसमें उन्हीं धर्मों के वर्गीकरण का विस्तार किया है।
3. **धातुकथा**- इसमें धातुओं का प्रश्नोत्तररूप में व्याख्यान है।
4. **पुग्गलपत्ति**- इस ग्रन्थ में मनुष्यों का विविध अंशों में वर्णन किया गया है। यह वर्गीकरण विविध रीति से गुणों के आधार पर है।
5. **कथावत्थु**- इस ग्रन्थ की रचना प्रश्नोत्तररूप में हुई है। इस ग्रन्थ का महत्त्व बौद्धधर्म के विकासात्मक इतिहास के लिए सर्वाधिक है। पिटकान्तर्गत होने पर भी इसके रचयिता तिस्स मोग्गलिपुत्त हैं, जो तीसरी संगीति के अध्यक्ष थे। इसमें क्रमशः बौद्धधर्म में जो मतभेद हुए, उनका भी संग्रह बाद तक होता रहा है। मतान्तरों का पूर्वपक्षरूप में समर्थन करके फिर उनका खण्डन किया गया है। 'आत्मा है या नहीं?- आदि प्रश्न उठा कर बौद्ध मन्तव्यों की स्थापना की गयी है।
6. **यमक**- इसमें प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दियं गये हैं और कथावत्थु तक के ग्रन्थों से जिन शंकाओं का समाधान नहीं हुआ, उनका विवरण इसमें दिया गया है।
7. **पट्ठान**- इसे 'महापकरण' भी कहते हैं। इसमें नाम और रूप के 24 प्रकार के कार्यकारणभाव-सम्बन्ध की विस्तृत चर्चा है।

इसमें द्रष्टव्य यह है कि बुद्ध ने जीवन के सभी पक्षों को इसमें उपन्यस्त किया गया है चाहे वह गृहस्थ हो अथवा संन्यासी, लोक हो अथवा परलोक, सामान्य मनुष्य हो अथवा भूत-प्रेत, पशु-पक्षी हो अथवा अदृश्य। तथागत प्रवेदित ज्ञान और उसका विभाजन अद्भुत एवं अकल्पनीय है क्योंकि विगत 2600 वर्षों में पूरी दुनिया के किसी भी व्यक्ति ने इसे छेड़ने का हिम्मत नहीं जुटा पाया है।

बुद्ध के इस विधा का भी असर संपूर्ण ज्ञान-जगत पर पड़ा और सभी संप्रदायों ने इस प्रकार का उपक्रम करके अपनी-अपनी परंपराओं का अभ्युत्थान का मार्ग प्रशस्त किया, जो आज भारतवर्ष की वैदिक संपदा के रूप में भारत का मान बढ़ा रही है। क्या हम इसे बुद्ध संस्कृति का मानव समाज पर प्रभाव नहीं मान सकते हैं? दुनिया के कई देश आज पूरी तरह से त्रिपिटक को अपना आदि ग्रंथ मानते हैं।

3. विहारीय परंपरा का अभ्युदय एवं विकास

अब तक प्राप्त ऐतिहासिक प्रमाण यह बता रहे हैं कि बुद्ध के पूर्व भारतवर्ष के संन्यासी वृक्षों के नीचे अथवा पर्वत कंदराओं में निवास किया करते थे कुछेक स्थलों पर पर्णकुटि अथवा आश्रम का उल्लेख प्राप्त होता है, जहाँ आचार्य अपने कुछ शिष्यों के साथ निवास कर धर्मकार्य किया करते थे।

इसी परंपरा को भगवान् बुद्ध ने भी अपनाया और संघ की स्थापना के साथ-साथ चार (चत्तारी निस्सयो) निश्रय का सिद्धान्त दिया हैं वे-

1. पिण्डीयालोपभोजनं निस्साय पब्बज्जा
2. रूक्खमूलसेनासनं निस्साय पब्बज्जा
3. पंसुकूलचीवरं निस्साय पब्बज्जा
4. पुत्तिमुत्तसेवनं निस्साय पब्बज्जा

इसका दूसरा नियम यह कह रहा है कि जिसे भी संघ में शामिल होना है, वह पेड़ के नीचे रहने का व्रत ले क्योंकि बुद्धत्व लाभ के कुछेक माह के अनन्तर बुद्ध के शिष्यों की संख्या हजार पार कर चुकी थी। अब ऐसी स्थिति में सबके लिए आवास अत्यंत दुलर्भ हो गया था।

इस अनुज्ञा को समाप्त करने और विहारों के निमार्ण की अनुज्ञा तथागत द्वारा राजगृह में अनाथपिण्डक को दिया गया जो न सिर्फ बुद्ध परंपरा में अपितु संपूर्ण भारतीय धार्मिक ज्ञान की परंपरा के स्थायित्व का प्रधान केन्द्र साबित हुआ। प्रतिफलस्वरूप संन्यासियों के जीवन ज्यादा स्थायी होने लगे और वैचारिक कृतियाँ धर्मशास्त्रों के रूप में स्थायित्व को प्राप्त कर सकीं जो आज भारत ही नहीं

संपूर्ण विश्व मानव-समाज का मार्ग दर्शन कर रही है।

मैंने पूर्व में ही कहा है कि बुद्ध पूर्व भारत धार्मिक चेतना और ज्ञान से ओत-प्रोत था, परन्तु विहारीय परंपरा के उदभव के पूर्व उसमें स्थायित्व का आभाव दिखाई पड़ता है, जिसका दुष्परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं। हम कहते हैं कि इस औषधि की चर्चा वेदों में प्राप्त होती है परन्तु उसका दस्तावेजीकरण नहीं होने के कारण हमें उसका एकस्व प्राप्त नहीं हो पाता है। परन्तु विहारीय परंपरा के अस्तित्व में आने के उपरान्त न सिर्फ बुद्ध प्रवेदित शास्त्र अपितु सभी भारतीय धर्मशास्त्र किसी-न-किसी रूप में प्रामाणिक होते चले गए। अत: मेरा मानना है कि बुद्ध का यह कृत्य संपूर्ण भारतीय संस्कृति के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान किया है।

4. विभिन्न प्रकार के स्तम्भ लेख, शिलालेख, मूर्तिकला आदि का विकास

तृतीय संगीति के उपरांत सम्राट अशोक ने सम्पूर्ण वृहत्तर भारत में शिलालेख स्तम्भ लेख, गुहा लेख आदि लिखने की राजाज्ञा निर्गत की और उसके प्रतिफल स्वरूप आज वे शिलालेख, स्तंभ लेख आदि प्राचीन ज्ञान के साक्ष्य के रूप में हमें प्राप्त हो रहे हैं। इसका श्रेय भी तृतीय संगीति के आचार्यों के साथ ही पालि परम्परा को देना होगा। दुर्भाग्यवश जिस परम्परा की शुरुआत बिहार प्रदेश से हुई उसका कोई भी प्रमाण इस बिहार की भूमि में प्राप्त नहीं हुआ है। यह गवेषण का विषय है कि रूम्मनदेई में अशोक ने शिलालेख लगवाया तो बोध गया में भी निश्चित तौर पर लगवाया होगा क्योंकि बोधगया धार्मिक महत्व में किसी भी प्रकार से कमतर नहीं है।

भारतवर्ष के तीन प्रमुख कला विद्यालयों के जनक के रूप में बौद्ध धर्म को माना जाना चाहिए क्योंकि भारतवर्ष में गांधार कला, मथुरा कला और सारनाथ कला का विकास भी बुद्ध के शिष्यों द्वारा ही किया गया। यह भी संस्कृति के एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में प्रतिस्थापित है।

5. वैश्विक मानव समुदाय से जुड़ाव

दुनिया के इतिहास में यह अनोखा एवं अद्‌भुत कृत्य का श्रेय भी पालि परम्परा को ही जाता है जहाँ से विभिन्न देशों में धर्म महामात्य भेजे गये। जिनकी सूची निम्नलिखित हैं-

मज्झान्तिक थेर - कश्मीर एवं गान्धार
महादेव थेर - महिषमंडल
रक्खित थेर - वनवासी
यूनानी मूल का धम्मरक्खित थेर- अपरान्तक
महारक्खित थेर - यवन देश
मज्झिम थेर - हिमवन्त प्रदेश
सोणक एवं उतरथेर - सुवण्ण भूमि
महिन्द, इट्ठिय, उत्तिय, सम्बल भददसाल थेर- लंका

निष्कर्ष:

इन मनीषियों ने वैचारिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान कर जो सेतु तैयार किया वह दुनिया के इतिहास में मिसाल है। इस परम्परा के किये गये कार्यो का जब हम मूल्यांकन करते हैं तो यह पाते हैं कि महामात्य परम्परा ने दुनिया के दर्जनों देशों में भारतीयता का अद्‌भुत प्रसार किया। जिसने उन देशों को बौद्ध धर्म का अनुयायी तो बनाया ही साथ ही भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का वाहक भी बनाया जो हजारों वर्षों से अब तक फल फूल रहा है। दुनिया के इतिहास में कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं है जिसने प्रेम-पूर्वक पूरे राष्ट्र को धर्म परिवर्तन अथवा सांस्कृतिक परिवर्त्तन का प्रमाण उपलब्ध करवाता हो।

हालांकि पेटेन्टीकरण के आधुनिक पैमाने पर पश्चिमी विद्वान इससे असहमत दिखाई देते हैं और कहते हैं कि भारतीयों ने अपने ज्ञान को ससमय लिपिबद्ध नहीं किया परन्तु मेरा मानना है कि भारतीयों ने अपने द्वारा किये गए सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास को तत्कालीन लेखन प्रणाली के द्वारा ठीक ढंग से डाक्यूमेन्ट किया है। आवश्यकता है उसे ठीक प्रकार से पढ़ने का जिससे भारतवर्ष को पूर्व काल में किए गए डाक्यूमेन्टेशन के आधार पर पेटेन्ट प्राप्त हों।

यह शोध पत्र के माध्यम से विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कराने का प्रयत्न किया गया है, जिससे देश में चल रहे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जैसे विचारधारा को विकसित करने में सहायता प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. Oxford Companion to Indian Archaeology- D. Chakravarty,Page 312
2. विनय पिटक महावग्ग - उपालि दारक वत्थु, दारीका नाथ उपाध्याय ।
3. पालि साहित्य का इतिहास, भरत सिंह उपाध्याय
4. चुल्लवग्ग, पृ. 239, नालन्दा संस्करण।
5. जिनचरितं- सिद्धार्थ सिंह, पृ. 05

❖❖❖